Indian J. Soc. & Pol. 11 (01): 113-120 : 2024 **ISSN : 2348-0084 (PRINT)**
(July-December 2023), 29 February 2024 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

राष्ट्रीय आंदोलन में महिला साझेदारी और उसका प्रभाव

अर्चना सिंह[1]

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, महाराज बलवंत सिंह पी0जी0, गंगापुर, वाराणसी, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

19वीं सदी का उत्तरार्द्ध वह समय था, जब समाज के सभी समूहों ने अपने आप को एक भारतीय राष्ट्र का हिस्सा मानकर स्वराज प्राप्ति के लिए संघर्ष किया। हालांकि उससे पहले भी ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध काफी विद्रोह सामने आए थे, परंतु 1885 में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना एक ऐसा मील का पत्थर साबित हुई जिसने भारतीय राष्ट्रवाद को मजबूत मंच प्रदान किया। गांधी जैसे नेता की अगुवाई ने स्वतंत्रता संघर्ष को सभी वर्गों व जातियों के लिए एक सार्वजनिक कृत्य बना दिया। आजादी की लड़ाई के विभिन्न चरणों जैसे स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

KEYWORDS: *राष्ट्रवाद, कांग्रेस,राष्ट्रीय, आन्दोलन, महिला सहभागिता*

इन चरणों में विभिन्न समुदायों और वर्गों जैसे उच्च, मध्यम, शहरी, ग्रामीण, मुस्लिम, दलित और आदिवासी वर्ग की महिलाओं ने भारी संख्या में भाग लिया। उन्होंने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन को संख्यात्मक दृष्टि से मजबूत बनाया, बल्कि उसमें महिलाओं से संबंधित विभिन्न मुद्दे और प्रश्न भी साथ लेकर आईं। महिलाओं को पहली बार सार्वजनिक गतिविधि में भाग लेने का अवसर मिला तथा महिलाओं के राजनीतिकरण की यह प्रक्रिया इतनी सहजता से हुई कि उन्हें पुरुष संरक्षकों की भी सराहना प्राप्त हुई। इसका वास्तविक कारण यह था कि आंदोलन को कभी भी राजनीतिक माना ही नहीं गया, इसे एक 'धार्मिक मिशन' के रूप में देखा गया तथा स्वतंत्रता के संघर्ष को 'देशपूजा' माना गया। 19वीं सदी का उत्तरार्द्ध वह समय था, जब समाज के सभी समूहों ने अपने आप को एक भारतीय राष्ट्र का हिस्सा मानकर स्वराज प्राप्ति के लिए संघर्ष किया। हालांकि उससे पहले भी ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध काफी विद्रोह सामने आए थे, परंतु 1885 में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना एक ऐसा मील का पत्थर साबित हुई जिसने भारतीय राष्ट्रवाद को मजबूत मंच प्रदान किया। गांधी जैसे नेता की अगुवाई ने स्वतंत्रता संघर्ष को सभी वर्गों व जातियों के लिए एक सार्वजनिक कृत्य बना दिया। आजादी की लड़ाई के विभिन्न चरणों जैसे स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

जिस प्रकार पूजा में शक्ति का आह्वान किया जाता है और स्त्री शक्ति का प्रतीक मानी गई है इसलिए महिलाओं को शक्ति का रूप मानकर राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल किया गया। बँकिम चंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित उपन्यास 'आनन्द मठ' में कहीं पर भी मातृभूमि को बचाने के लिए महिलाओं द्वारा राजनीति में शामिल होने की बात नहीं की गई थी। परंतु राष्ट्र को माता के रूप में पेश किया गया था। इसने 'स्त्रीत्व के आदर्श' को राष्ट्रवाद के साथ जोड़ दिया था।

1875 के दौरान प्रकाशित कुछ पत्रिकाओं में भी राजनीति को स्त्रियों के लिए उपयुक्त क्षेत्र नहीं बताया गया था। इस परिस्थिति में परिवर्तन उस समय आया जब काफी संख्या में बंगाली महिलाओं ने वायसराय को 'इल्बर्ट बिल' के विरोध में ज्ञापन दिया। इसके बाद 1889 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में 10 महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। 1909 में स्वर्णकुमारी घोषाल और कुमुदनी गांगुली ने कांग्रेस अधिवेशन में प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। इसके बाद के अधिवेशनों में तो महिलाओं की उपस्थिति बढ़ती ही गई। बंगाल विभाजन के विरुद्ध 1905–08 के दौरान बंगाल में चले स्वदेशी आंदोलन में बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय गतिविधियों में स्त्रियों की भूमिका की शुरूआत दिखाई पड़ती है। 1904 से कांग्रेस के मध्यमार्गियों ने विभाजन की योजना के विरुद्ध याचिकाएं दायर करके, एवं प्रस्ताव पारित कर अभियान चलाया। 1905 के कुछ महीनों तक तो ये तरीके प्रभावी रहे, परंतु आंदोलन की कमजोरी के कारण जुलाई 1905 से विरोध का स्वरूप बदल गया। अगस्त में ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का निर्णय लिया गया तथा अक्तूबर में विभाजन दिवस मनाया गया जिसमें राखी के आदान–प्रदान के द्वारा भाई–चारे का संदेश दिया गया। बंगाल के बंटवारे पर शोक प्रदर्शित करने के लिए विभाजन दिवस पर लोगों ने अपने घरों में चूल्हे नहीं जलाए।'

अगस्त 1905 के बाद से आंदोलन में स्त्रियों की सहभागिता की खबरें आने लगीं। कलकत्ता में 24 अगस्त को फेडरेशन हॉल की आधारशिला के कार्यक्रम को पांच सौ स्त्रियों ने देखा। स्वदेशी की जबरदस्त लहर बंगाल से उठकर देश के कोने–कोने में फैली।' नेताओं द्वारा तूफानी दौरे करना, महिलाओं द्वारा विदेशी सामान की दुकानों पर धरने देना और विदेशी कपड़ों की होलियां जलाना, छात्र–छात्राओं द्वारा सरकारी आदेशों के उल्लंघन पर निष्कासन की धमकियों के उत्तर में स्कूल–कॉलेज छोड़ देना आम बात थी। जुलूसों, रैलियों, धरनों द्वारा बहिष्कार आंदोलन चलाने और स्वदेशी प्रचार के साथ उसके लिए फंड एकत्रित करने में महिलाओं की मुख्य भूमिका थी। बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब की

1: Corresponding Author

महिलाएं कुछ अधिक ही सक्रिय थीं। उन दिनों घोर अशिक्षा के कारण महिलाओं में विशेष जागृति नहीं थी। फिर भी वे इस अवसर पर पीछे नहीं रहीं। घर–घर में चरखा चलाना और खादी का प्रचार करना जोरों पर था।

स्त्रियों को प्रोत्साहित करने के प्रारंभिक कदम इसी दौरान उठाए गए। चाहे छोटे पैमाने पर ही सही, स्त्रियों को राष्ट्रवादी आंदोलनों में शामिल होने के लिए इसलिए तैयार किया गया क्योंकि वे राष्ट्रवादियों की पत्नियां, बहनें तथा पुत्रियां थीं तथा आंदोलन के लिए समर्थन समूह स्थापित कर सकती थीं। आंदोलन के दौरान ताराप्रसन्न बोस की पत्नी सरोजिनी बोस व श्रीमती गांगुली ने स्वराज्य तक आभूषण न पहनने की शपथ ली। अगस्त 1907 में जब विवेकानंद के भाई भूपेंद्रनाथ दत्ता गिरफ्तार कर लिए गए तो 208 स्त्रियों ने एक विरोध सभा का आयोजन किया जिसमें उनकी माता को सम्मानित किया गया।' इसके साथ ही बड़ीसाल में अश्विनी कुमार दत्त की बांधव समिति को स्वदेशी के लिए स्त्रियों ने अपनी बचत पूँजी सौंप दी। उसी वर्ष जब सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने मेमन सिंह जिले का दौरा किया तो स्त्रियों ने उनका जोरदार स्वागत किया। 1909 में लाहौर में हुई औद्योगिक प्रदर्शनी में स्त्रियों ने अपना अलग 'महिला खंड' स्थापित किया। वहां के बैरिस्टर रोशन लाल की पत्नी हर देवी हिंदी पत्रिका 'भारत भगिनी' का संपादन कर रही थीं। उन्होंने सभाओं के आयोजन, फंड एकत्रण, समाज सुधार व राजनीतिक कैदियों की मदद के लिए अभियान जारी रखा। स्यालकोट की सुशीला देवी ने स्त्रियों को स्वदेशी आंदोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। सुशीला देवी ने स्वदेशी आंदोलन से जुड़ी स्त्रियों की एक सभा आयोजित की, जिसमें विचाराधीन कैदी 'कार्यकर्ताओं' के कानूनी खर्चे के लिए धन संग्रह किया गया।

'हिसार आर्य समाज' की महिला सदस्य पूरनी देवी ने पंजाब के अनेक जिलों का दौरा किया तथा स्त्रियों से अपने बच्चों को सरकारी नौकरियों में जाने के बजाय उन्हें अपना निजी व्यवसाय शुरू करने की प्रेरणा दी, ताकि वे स्वदेशी वस्तुओं का निर्माण एवं बिक्री कर आत्मनिर्भर बनने में सहयोग दे सकें। कूका नेत्री हुक्मी भी लुधियाना व मलेरकोटला क्षेत्रों में सक्रिय थीं। दिल्ली की किया जिसमें स्त्रियों को राष्ट्रवादी राजनीति का प्रचार करने की शिक्षा दी गई। स्वर्ण कुमारी कर रही थीं। गृह विभाग की सूचना के अनुसार, आज्ञावती ने एक विधवा आश्रम स्थापित देवी की बेटी सरला देवी चौधरी बंगाल से पंजाब में जाकर बंगाल और पंजाब के बीच संपर्क–सेतु तो बनी ही थीं, तिलक के भी सीधे संपर्क में थीं और महाराष्ट्रीयन महिलाओं के स्वदेशी आंदोलन को बल प्रदान कर रही थीं। उन्होंने जगह–जगह 'लक्ष्मी भंडार' खोलकर स्वदेशी आंदोलन को लोकप्रिय बनाया। साथ ही, बंगाल और पंजाब से बाहर जगह–जगह दौरा कर इस आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन का रूप देने में भी सहायक हुई थीं। कुमुदनी मित्रा ने 'शिक्षित ब्राह्मण स्त्रियों का एक गुट तैयार किया जो भूमिगत क्रांतिकारियों के मध्य सूचनाओं का आदान–प्रदान करता था।' लीलावती मित्रा नामक एक ब्राह्मण महिला ने भी क्रांतिकारी छात्रों की सहायता की। स्वदेशी आंदोलन में सक्रियता के कारण उनके पति को देश निकाला दे दिया गया तो लीलावती ने सरकार द्वारा दी जाने वाली मासिक गुजारे भत्ते की आर्थिक सहायता ठुकरा दी। 1909 में अरविंद घोष के जेल से रिहा होने के बाद लीलावती ने उन्हें अपने घर में शरण दी।

इन सबके बावजूद स्वदेशी आंदोलन में स्त्रियों की भागीदारी सुस्वीकृत लैंगिक विचारधारा के दायरे में रही, जो घर को स्त्रियों के कार्यकलाप के वैध क्षेत्र के रूप में पेश करती थी। उन्होंने ब्रिटिश सामानों का बहिष्कार किया और स्वदेशी का उपयोग किया, अपनी कांच की चूड़ियां तोड़ी और प्रतिरोध के अनुष्ठान के रूप में रसोईबंदी दिवस मनाए। उन दिनों बंगाल में स्त्रियों का समर्थन पाने के लिए जिस सबसे शक्तिशाली बिंब का उपयोग किया गया, वह धन दौलत की देवी लक्ष्मी का था, जिसके अनुसार बंगाल विभाजन के कारण लक्ष्मी ने अपना घर छोड़ दिया था और जिसे वापस लाने, सुरक्षा देने और देखभाल करने की जरूरत है। साथ ही, दुर्गा और काली को भी शक्ति के रूप में राष्ट्रवाद में जोड़ा गया। 1907 में कुमुदिनी मित्रा ने 'सुप्रभात' नामक पत्र शुरू किया जिसमें मां काली, भारतमाता और क्रांति के संबंधों को दोहराया गया।" इस प्रकार शक्ति के राष्ट्रवाद में जुड़ने के कारण महिलाओं को राष्ट्रवादी संघर्ष में भूमिका निभाने का अवसर मिला। महिलाएं प्रथम विश्व युद्ध के समय ही राजनीति से परिचित हो चुकी थीं। प्रथम विश्व युद्ध के बाद कुछ महिला संगठनों के बनने, कुछ महिला नेताओं के उभरने तथा कुछ राजनीतिक संगठनों में महिलाओं के भाग लेने की पृष्ठभूमि के कारण कांग्रेस के लिए अपने आंदोलनकारी कार्यक्रमों में महिलाओं को शामिल करना आवश्यक हो गया।

इसी समय भारतीय राष्ट्रवाद में गांधीजी का प्रवेश हुआ जो कि 1915 में दक्षिण अफ्रीकी संघर्ष के महान नेता के रूप में वापस आए थे। गांधी शीघ्र ही सुधार आंदोलनों में कार्यरत महिलाओं से मिले। स्त्रियां जो स्वार्थहीन बलिदान दे सकती थीं उनकी शक्ति का अनुभव उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ही कर लिया था और उसे राष्ट्र की सेवा में लगाने का फैसला किया था। गांधीजी राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे। वे महिलाओं की सभाओं और भाषणों के दौरान आंदोलन में उनकी भागीदारी अनिवार्य बताते थे। उन्हें यह कहकर प्रेरित करते थे कि देवियों और वीरांगनाओं की तरह आंदोलन में उनकी अपनी अलग भूमिका है और उनमें इस भूमिका को निभाने की शक्ति और हिम्मत भी है। उन्होंने महिलाओं को विश्वास दिलाया कि आंदोलन को उनके महत्त्वपूर्ण योगदान की आवश्यकता है। वे कहते थे कि जब महिलाएं सत्याग्रह आंदोलन में शामिल होंगी तभी पुरुष भी आंदोलन में अपना पूरा योगदान दे पाएंगे। उन्होंने महिला नेताओं से कहा कि उन्हें सामाजिक सुधार, महिला शिक्षा एवं महिला अधिकारों संबंधी कानून बनाने के लिए काम करना चाहिए, ताकि उन्हें उनके बुनियादी अधिकार मिल सकें। उनकी नजर में सीता, दमयंती और द्रौपदी भारतीय स्त्रियों के लिए आदर्श पात्र थीं।

भारतीय पुराण ग्रंथों से लिए जाने के बावजूद गांधी ने इन प्रतीकों की पुनर्रचना करके उनको नए अर्थ दिए। इन स्त्रियों को अपने पतियों की दासियां न बतलाकर अत्यंत पुण्यात्माएं और अपने परिवार, राज्य और समाज के लिए सर्वोच्च बलिदान दे सकने में समर्थ कहा गया। गांधीजी की दृष्टि में स्त्री और पुरुष बराबर थे। परंतु बराबरी का यह अर्थ कदापि नहीं था कि महिलाएं वे सब काम

करें जो पुरुष करते हैं। गांधीजी की आदर्श दुनिया में स्त्रियों और पुरुषों के अपने स्वभाव व क्षमतानुसार काम के अलग–अलग क्षेत्र निश्चित थे जिसे वे स्त्री–पुरुष के बीच स्वाभाविक श्रम–विभाजन कहते थे। उन्होंने महिलाओं को स्वदेशी व्रत लेने, विदेशी वस्तुओं का परित्याग करने और प्रतिदिन थोड़े समय सूत कातने और खादी पहनने की प्रतिज्ञा लेने के लिए कहा। खादी द्वारा गांधीजी महिलाओं को श्रम–प्रक्रिया में लाना चाहते थे। गांधीजी ने इस समस्या का हल आंदोलन को अहिंसात्मक बनाकर निकाला जिसमें धर्म, त्याग तथा पीड़ा सर्वोपरि थे और जो मुख्यतया महिलाओं के ही गुण माने जाते हैं।

अहिंसात्मक आंदोलन में भाग लेने से स्त्रियों के नारी–सुलभ व्यक्तित्व पर कोई आंच नहीं आती थी। इस प्रकार वे आंदोलन में भाग लेने के लिए न केवल महिलाओं में विश्वास जगाने में सफल हुए, बल्कि महिलाओं के पुरुष संरक्षकों पति, पिता, पुत्र, भाइयों का विश्वास भी प्राप्त कर पाए। यही कारण था कि जब महिलाएं बाहर आकर राजनीति के क्षेत्र में काम करती थी तो उनके परिवार के पुरुष सदस्य उनकी सुरक्षा के बारे में निश्चिंत रहते थे। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद जब स्व–शासन की मांग उठाई गई तो ब्रिटिश सरकार ने 1919 में रौलट कानून पास किया जिसके तहत किसी भी व्यक्ति के पास सरकार विरोधी कोई भी सामग्री पाए जाने जैसे छोटे–मोटे 'अपराध' के लिए भी बिना मुकदमा चलाए उस व्यक्ति को जेल भेजा जा सकता था। सही मायने में राष्ट्रवादी आंदोलन में स्त्रियों की व्यापक सहभागिता इस कानून के बाद ही शुरू हुई। इस कानून के विरोध में संघर्ष छेड़कर गांधी एक अखिल भारतीय नेता के रूप में उभरे। 'रौलट कानून' के विरोध में 6 अप्रैल को देशभर में हड़ताल की घोषणा की गई थी। हड़ताल काफी शांतिपूर्ण और सफल रही, लेकिन नेताओं की नजरबंदी पर विरोध–प्रदर्शन के लिए निकले शांतिपूर्ण जुलूस पर जब अमृतसर में गोली चली तो प्रतिरोध में लोगों ने टकरा जाने वाले हर अंग्रेज पर हमला शुरू कर दिया।

इसी क्रम में 7 अप्रैल को गांधीजी अमृतसर के लिए रवाना हुए, परंतु उन्हें मथुरा में ही रोक लिया गया। इसके विरोध में 14 अप्रैल को पंजाब के जलियांवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा की जा रही थी जिस पर जरनल ओ डायर ने अंधाधुंध गोलियां चलवा दी, जिसमें मरने वाली महिलाओं, किशोरियों और बच्चों की संख्या असंख्य थी। 'जलियांवाला बाग कांड' के विरुद्ध देश भर में रोष उमड आया था। जुलाई 1919 में सरोजिनी नायडू 'होम रूल लीग' की प्रतिनिधि बनकर इंग्लैंड गई, तब उन्होंने लंदन के किंग्सवे हॉल में जलियांवाला कांड पर ऐसा निर्भीक तथ्यपूर्ण भाषण दिया कि सारे संसार की आंखें खुल गईं और श्रीमती नायडू की अद्‌भुत वाक् कला की धाक जम गई। इस घटना के विरोध में अध्यापकों, छात्रों और महिलाओं की भी बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां की गईं।

सितंबर 1920 में कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन में 'अहिंसक असहयोग आंदोलन' प्रारंभ किया गया। इस आंदोलन का कार्यक्रम राष्ट्रव्यापी था। स्कूलों, कॉलेजों का बहिष्कार, अदालतों का बहिष्कार, उपाधियों का बहिष्कार शराब और विदेशी कपड़ों की दुकानों का बहिष्कार आदि।" 1921 में गांधीजी ने अपने एक लेख के द्वारा असहयोग आंदोलन के लिए महिलाओं का आह्वान किया और प्रतिक्रिया में हजारों की संख्या में महिलाएं घरों से निकलकर आईं। विदेशी कपड़ों की होलियां जलाई जाने लगीं। धरने देकर शराब और विदेशी सामान की दुकाने बंद कराई जाने लगीं। घर–घर में चरखे चलने लगे और खादी पहनी और बेची जाने लगी। स्वदेशी आंदोलन की तरह विदेशी चीजों का बहिष्कार करने में बंगाल की महिलाओं ने ही पहल की। देशबंधु चितरंजन दास की पत्नी श्रीमती बसंती देवी और उनकी बहन उर्मिला देवी की अगुवाई में स्त्रियों ने खादी बेची और गैर–कानूनी सभाएं आयोजित करके गिरफ्तारियां दीं।" मुंबई में, महिलाओं ने राष्ट्रीय स्त्री सभा का गठन किया जो पूरी तरह राष्ट्रीय सक्रियता के लिए समर्पित था।

यह पहला महिला संगठन था जो बिना पुरुषों की मदद के चलाया जाता था। राष्ट्रीय स्त्री सभा की सदस्यों ने पूरे मुंबई शहर में खादी का प्रचार किया। उन्होंने नवंबर 1921 में 'प्रिंस ऑफ वेल्स' की भारत यात्रा के विरोध में पूरे मुंबई शहर में हड़ताल आयोजित की। उड़ीसा और असम में भी आंदोलन का ज़ोर कम नहीं था। उड़ीसा की रमा देवी चौधरी और नेपाल की सावित्री देवी ने जगह–जगह दौरा करके असहयोग आंदोलन और स्वदेशी प्रचार के लिए जनमत जाग्रत किया। मध्य प्रांत में अनुसूया बाई काले महिला–जागरण और बहिष्कार आंदोलन दोनों क्षेत्रों में सक्रिय थीं, तो प्रसिद्ध कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान अपनी जोशीली और मार्मिक कविताओं – 'खूब लड़ी मर्दानी' और 'जलियांवाला बाग में बसंत' से आंदोलनकारी युवक–युवतियों में प्रेरणा भर रही थीं।

दक्षिण भारत की महिलाएं लीला बाई सुब्रमण्यम, लक्ष्मीबाई संगम, मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी, अम्मू स्वामीनाथन, कामेश्वरमा कुप्पास्वामी आदि जो अभी तक सामाजिक क्षेत्र में ही सक्रिय थीं, बहिष्कार आंदोलन के साथ राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में भी कूद पड़ीं और 'देश सेविका संघ' की स्थापना की। इसी का परिणाम था कि 1921 के कांग्रेस अधिवेशन में 145 महिला प्रतिनिधि शामिल हुईं, जिसमें 131 महिलाएं स्वैच्छिक कार्यकर्ता थीं और 14 महिलाएं विभिन्न समितियों की सदस्य थीं। 1921 में गांधीजी द्वारा स्त्रियों के लिए तय की गई सीमित भूमिका के विपरीत स्त्रियों ने एक सक्रिय भूमिका का निर्वाहन किया। असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन के बीच के काल में भी महिला भागीदारी में कोई कमी नहीं आई।

इस समय तक सरोजिनी नायडू एक प्रमुख राष्ट्रीय नेत्री के रूप में उभर चुकी थीं और 1925 के कांग्रेस अधिवेशन में उन्हें अध्यक्ष चुन लिया गया। इस सम्मानजनक पद पर आसीन होने वाली वह पहली भारतीय महिला थीं। इससे महिला गतिविधियों में तेजी आई। वर्ष 1926 में श्रीमती मुतुलक्ष्मी रेड्डी भारत की पहली महिला विधायक के रूप में मद्रास विधान सभा में पहुंची और उपाध्यक्ष बनी।" इस दौरान अखिल भारतीय स्तर पर महिला संगठनों के निर्माण या गठन का दौर शुरू हुआ, जिन्होंने राष्ट्रवाद के साथ–साथ महिला प्रश्नों को भी आगे बढ़ाया। 1928 के साइमन आयोग बहिष्कार आंदोलन में भी महिलाओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया, इसमें महिलाएं कहीं अपने भाइयों के साथ थीं तो कहीं आगे थीं।

सविनय अवज्ञा आंदोलन से राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का एक नया चरण शुरू हुआ। 1930 के इस आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों ही दृष्टियों से 1920 के दशक की शुरूआत की भागीदारी से भिन्न थी। 12 मार्च 1930 को अहमदाबाद से दांडी तक 240 मील की दांडी यात्रा से सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ हुआ। यह आंदोलन अंग्रेजों के नमक कानून को तोड़ने, उनके नमक बनाने के एकाधिकार को चुनौती देने के लिए चलाया गया था। महिलाएं इस यात्रा में हिस्सा लेना चाहती थी। लेकिन गांधीजी ने उन्हें यह कहकर मना कर दिया कि इससे अंग्रेज सोचेंगे कि भारतीय कायर हैं और खुद के बजाय महिलाओं को आगे कर रहे हैं। फिर भी जहां–जहां यात्रा का पड़ाव होता भारी संख्या में महिलाएं गांधीजी को सुनने के लिए जमा होतीं। परंतु बाद में, महिलाओं को इसमें औपचारिक रूप से शामिल कर लिया गया। दांडी यात्रा के अंतिम दिन सरोजिनी नायडू उसमें शामिल हुईं। नमक सत्याग्रह में गिरफ्तार होने वाली वे पहली महिला थीं। 25 दांडी पहुंचकर गांधीजी ने महिलाओं का एक सम्मेलन बुलाया और वहां उन्होंने महिलाओं के लिए आंदोलन के भावी कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई, जिसमें महिलाओं को अपने लिए इस तरह के कार्यक्रम आयोजित करने थे जो उनके स्वभाव के अनुकूल हों। उन्हें खासकर विदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों का बहिष्कार करना था।

'दांडी यात्रा' के बाद महिलाओं को स्वाधीनता आंदोलन में पूरी तरह सम्मिलित कर लिया गया। हजारों महिलाओं ने 'नमक सत्याग्रह आंदोलन' में नमक बनाने से लेकर बेचने तक के काम किए। 1930 के दशक में, महिलाओं को पहली बार पुलिस दमन का भी सामना करना पड़ा। महिलाओं के जुलूसों पर भी लाठीचार्ज किया गया तथा कई बार पुलिस ने उन्हें काफी बेरहमी से मारा। इस प्रकार की घटनाओं से जनता में काफी आक्रोश फैला तथा आंदोलन में और तेजी आई। सामाजिक सुधारवादी और राष्ट्रवादी दोनों ही प्रकार की पत्रिकाओं में भी पुलिस की काफी निंदा की गई। इस दौरान जेल भेजी जाने वाली महिलाओं की संख्या तेजी से बढ़ी। 1930 में, मुंबई में मतदान केंद्र पर चुनाव के खिलाफ धरने पर बैठी 400 महिलाओं को एक साथ गिरफ्तार करके कड़ी सजा दी गई। जब बड़े पैमाने पर बहिष्कार की प्रतिक्रिया में सरकार के गिरफ्तारी आदेश आए तो कांग्रेस ने कार्यकर्ताओं को स्वयं गिरफ्तारी देने के लिए आमंत्रित किया। शहरी और ग्रामीण दोनों ही महिलाओं ने 1932–33 में भारी संख्या में गिरफ्तारी दी। आंदोलन में पहली बार सीमाप्रांत की बुरके वाली महिलाएं भी शामिल हुई। इस पूरे आंदोलन में बहुत बड़ी संख्या में महिलाओं ने पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाते हुए काम किया और भारी कष्ट उठाए। दिल्ली में अरुणा आसफ अली नेतृत्व करते हुए दूसरी बार गिरफ्तार हुई और भारी जुर्माने के साथ उनके कीमती सामान की भी जब्ती कर ली गई।

आंदोलन के दौरान देशी रियासतों में भी प्रजामंडलों के माध्यम से आंदोलन उठ खड़ा हुआ था। 1930 के नमक सत्याग्रह में स्त्रियों की इस सक्रियता का एक लाभ यह भी अब महिला संगठनों पर उच्चवर्गीय स्त्रियों का प्रभाव समाप्त हो गया था। उदाहरण के लिए, कमला देवी चट्टोपाध्याय बताती हैं कि ए.आई.डब्ल्यू.सी. में पहले प्रांतीय राज्यों की महारानियों को अध्यक्ष बनाया जाता था, परंतु 1930 के दशक में महिलाओं ने अनुभव किया कि ऐसी अध्यक्ष मात्र 'मुखौटा' होती है, ए.आई.डब्ल्यू.सी. सक्रिय स्त्रियों का संगठन है। इसीलिए 1931 में सरोजिनी नायडू को सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया। भारत छोड़ो आंदोलन के अंतर्गत 'करो या मरो' की शुरूआत हुई। इस आंदोलन में भी स्त्रियों ने हजारों की संख्या में भाग लिया। इस आंदोलन के दौरान अधिकांश नेता जेल में थे और कुछ भूमिगत हो गए थे, इसलिए अब विद्रोह की अगुवाई मजदूर, किसान और छात्र कर रहे थे। बड़े पैमाने पर ग्रामीणों, गृहणियों और स्कूली छात्र–छात्राओं ने इसमें आगे बढ़कर हिस्सा लिया। सरकार ने भी विद्रोह को दबाने के लिए सखाराम माते, बंगाल की 73 वर्षीय वृद्धा मांतगिनी हाजरा, असम की 14 वर्षीय किशोरी हर उपाय किए। महिलाओं पर भी हर तरह के अत्याचार किए गए। हजारों महिलाएं भूमिगत हुई तथा समानांतर सरकार बनाने में सहायक बनी और कई गैर–कानूनी कामों में भागीदार बनीं। भूमिगत नेत्रियों में अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी और उषा मेहता के नाम इस आंदोलन में उभरे और राष्ट्रीय मंच पर छा गए। अरुणा आसफ अली को पकड़वाने के लिए सरकार ने 5 हजार रु. का पुरस्कार भी घोषित किया था। पर यहां वहां छिपते हुए, अनेक कष्ट सहते हुए भी वे पूरी अवधिभर आंदोलन का संचालन करती रहीं और अंत तक पुलिस के हाथ नहीं आईं। जब उनके वारंट की अवधि समाप्त हो गई, तभी वे सामने आई। सुचेता कृपलानी ने भी भूमिगत रहते हुए राष्ट्रीय कांग्रेस के महिला विभाग की स्थापना की और 'भूमिगत स्वयंसेवक दल' संगठित कर जगह–जगह उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की। कुमारी उषा मेहता का नाम 'बंबई रेडियो षड्यंत्र केस' में प्रसिद्ध हुआ। जहां एक ओर, महिलाएं सविनय अवज्ञा और असहयोग आंदोलनों में भाग ले रही थीं, वहीं काफी संख्या में महिलाएं क्रांतिकारी आंदोलन से भी जुड़ रही थीं।

आंदोलन की शुरूआत में उनका काम थोड़ा सीमित था जैसे क्रांतिकारियों को घर में पनाह देना, प्रचार करना, पैसा इकट्ठा करना, हथियारों को छिपाकर रखना और एक जगह से दूसरी जगह ले जाना तथा विस्फोटक बम बनाना, महिलाएं इन सभी गतिविधियों में न केवल शामिल थीं, बल्कि कई जगह नेतृत्व भी संभाल रही थी। 1913 में क्रांतिकारी आतंकवाद की समर्थक कुमुदनी मित्रा को बुडापेस्ट में संपन्न इंटरनेशनल वीमेन सफरेज अलायंस कांग्रेस के लिए भारतीय प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित किया गया।"इस प्रकार, यद्यपि क्रांतिकारी आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली स्त्रियों का योगदान अतुलनीय था, साथ ही उन्होंने महिलाओं की परंपरागत लैंगिक भूमिका को तोड़ने का प्रयास भी किया। परंतु फिर भी समाज उन्हें सम्मान और प्रतिनिधित्व के योग्य नहीं मानता था। ये स्त्रियां राष्ट्रवादी स्त्रियों के तिरस्कार का भी पात्र बनी रहीं। प्रीतीलता वाडेकर जो कि स्वतंत्रता आंदोलन की प्रसिद्ध नेत्री थी ने जब यह प्रश्न उठाया कि "मुझे आश्चर्य होता है कि क्यों देश की आजादी की लड़ाई जैसे कार्य के लिए महिलाओं और पुरुषों के कार्यों में अंतर होना चाहिए। यदि हमारे भाई मातृभूमि की लड़ाई में हिस्सा ले सकते हैं तो बहनें क्यों नहीं? यदि सत्याग्रह आंदोलन में बहनें अपने भाइयों के आस–पास खड़ी हो सकती हैं तो वे क्रांतिकारी आंदोलन

में भाग लेने की अधिकारी क्यों नहीं हैं?" तो पुरुष प्रधानता वाली राष्ट्रवादी विचारधारा के पास इसका कोई उत्तर नहीं होता था।

1930 के दशक के आखिरी दिनों में नारीवादी आंदोलन के क्षेत्र में कम्युनिस्टों का प्रवेश प्रारंभ हुआ। उषा बाई डांगे जैसी कम्युनिस्ट महिलाओं ने बंबई की कपड़ा मिलों में महिला कामगारों को बड़े पैमाने पर संगठित करना शुरू कर दिया था और यह बात अनुभव की गई कि 'महिलाओं को संगठित करना' महिलाओं के लिए आसान है, परंतु महिलाओं को स्वतंत्र रूप से संगठित करने के सामूहिक प्रयास स्वाधीनता संग्राम में स्त्रियों की बढ़ती सहभागिता के बाद ही हुए। कम्युनिस्ट तथा राष्ट्रवादी स्त्रियों की पहली संयुक्त सहभागिता राजनीतिक कैदियों की रिहाई के लिए 1930 में चलाए गए अभियान के दौरान हुई। सक्रिय महिला कार्यकर्ताओं ने एकजुट होकर कांग्रेस महिला संघ की स्थापना 1939 में की। बंगाल में कांग्रेस महिला संघ के अन्य घटक थे– एआईडब्ल्यूसी, रेडिकल स्त्री संघ, युगांतर तथा भूमिगत कम्युनिस्ट गुट। उन्होंने मंदिरा नामक एक पत्रिका के प्रकाशन तथा राजनैतिक कैदियों की रिहाई की मांग करने के लिए नुक्कड़ सभाएं आयोजित करने का निर्णय लिया। 'राजनीतिक कैदियों की माताएं' नामक गुट की अलग स्थापना की गई। स्वाधीनता संग्राम में महिलाओं की सहभागिता इस तरह बढ़ी की अखिल भारतीय छात्र महासंघ को एक अलग महिला विद्यार्थी समिति बनानी पड़ी, जिसने लखनऊ में 1940 में हुए महिला विद्यार्थी सम्मेलन में भाग लिया।

वामपंथी नेतृत्व में किसान और कामगार महिलाओं ने भी बड़े पैमाने पर सहभागिता दर्ज कराई। जिसमें हम उत्तरी बंगाल का तेभागा आंदोलन, आंध्र प्रदेश का तेलंगाना आंदोलन और पश्चिमी भारत में कपास मिलों के आंदोलन को शामिल कर सकते हैं। परंतु शुरूआत में कम्युनिस्ट समूहों के अंदर महिला मुद्दों और संबंधों पर उठाए गए सवाल शीघ्र ही व्यर्थ लगने लगे क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी के अंदर ही उसके पितृसत्तात्मक चेहरे पर सवाल उठने लग गए थे। अब किसान और भारत में कामगार महिलाओं द्वारा पूछे गए इस चर्चित प्रश्न कि "मेरा कामरेड मुझे घर पर क्यों पीटता है?" का कम्युनिस्ट पार्टी के पास कोई उत्तर नहीं था।" भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उपाश्रित वर्ग की भूमिका/सहभागिता भारत में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष दो स्तरों पर था एक कुलीनों के स्तर पर, दूसरा आम जनता के स्तर पर विपिन चंद्र ने अपने लेख 'आजादी का संघर्ष' में तर्क दिया है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन विभिन्न वर्गों का एक जन–आंदोलन था। उनके अनुसार, उपनिवेशी भारत में दो प्रकार के अंतर्विरोध थेकृप्रमुख अंतर्विरोध भारतीय जनता और ब्रिटिश राज के हितों के बीच में था, पर उससे अलग हटकर भारतीय समाज के अंदर वर्गों, जातियों और धार्मिक समुदायों के बीच भी अनेक गौण अंतर्विरोध थे। परंतु उनपर समझौते कर लिए गए थे और इस तरह एक राष्ट्रवादी विचारधारा का वर्चस्व स्थापित हुआ।

हालांकि यह भी सच था कि सभी गौण टकराव संतोषजनक ढंग से हल नहीं किए जा सके। इस प्रकार उपाश्रित वर्ग का संघर्ष दोहरा था। वे समाज में उन्हें दी गई भूमिका को चुनौती दे रहे थे, वहीं उपनिवेश विरोधी संघर्ष में भी अपनी भूमिका दर्ज करा रहे थे। इसमें दलित और आदिवासी महिलाओं का भी विशेष योगदान रहा है। भारतीय समाज के निम्नतम तबके से संबंधित होने के बावजूद राष्ट्रीय आंदोलनों में दलित महिलाओं की भूमिका सराहनीय रही है। जहां 1857 के विद्रोह के दौरान झांसी की लड़ाई में झलकारी बाई ने अपनी रानी को बचाने के लिए अपना बलिदान दिया, वहीं 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में चम्पूताई गणपतराव बंसोड (बिंउचनजंप ळंदंचंतंव ठंदेवक) ने सक्रिय भागीदारी को और कठोर श्रम के साथ 6 महीने के कारावास की सजा पाई। फुलजले तथा गोपिकाबाई बाजीराव (चैनस्रमसम, ळवचपांइंप ठंरपतंव) ने भी 1931–32 के सत्याग्रह में शराब की दुकानों पर धरने के खिलाफ 3–3 महीने की सजा पाई।

राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी के साथ ही दलित महिलाओं ने भारतीय समाज में मौजूद जातिवाद और अस्पृश्यता से मुक्ति के व्यापक आंदोलन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह आंदोलन कहीं अधिक अर्थपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन था, जिसने ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था में मौजूद आंतरिक दासता पर चोट की थी। हालांकि जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता की समाप्ति के लिए दलितों द्वारा चलाया गया आंदोलन डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व के बाद अधिक उग्र हुआ, परंतु उनसे पहले दलित महिलाओं ने इस अन्याय के विरुद्ध जागरुकता पैदा की थी। दलित महिलाओं की तरह ही आदिवासी महिलाओं ने भी राष्ट्रीय आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। रोहतासगढ़ में तीन बार तुर्क सेना पर हमला हुआ था जिसमें तीनों बार 'सिनगी दई' और 'कइली दई' के नेतृत्व में महिलाओं ने मुकाबला करके उन्हें पछाड़ा। संथाल विद्रोह में सिद्ध–कान्हु और चांद भैरव की दो बहनों 'फूलो' और 'धानो' ने अंग्रेजों से मुकाबला किया और अंग्रेजों के 21 सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया। झारखंड की 'देवमनी' उर्फ 'बंधनी', 'माकी' भी बलिदान का प्रतीक हैं। इनके अलावा चम्पी, नागी, साली, थिग्गी, लेम्बु, मकी वे आदिवासी महिलाएं हैं, जिन्होंने आदिवासी विद्रोहों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।"

इन सबके अलावा एक और महत्त्वपूर्ण नाम, नागालैंड की आदिवासी महिला रानी गिडालू का है, जो नागरिक अवज्ञा आंदोलन में अपनी सहभागिता के कारण प्रख्यात हुई। लोग प्यार से उन्हें रानी कहते थे। रानी मात्र तेरह वर्ष की आयु में ही स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़ीं। अंग्रेजों ने गिडालू की गिरफ्तारी के लिए अनेक हथकंडे अपनाए। गिडालू को गिरफ्तार करके जेल भेजने से पूर्व ब्रिटिश सरकार ने उसकी खोज के अनेक असफल प्रयास किए। परंतु जैसा कि नागरिक अवज्ञा आंदोलन में शामिल अनेक आदिवासी आंदोलनकारियों के साथ अक्सर होता था, उनके ऊपर कांग्रेस नेताओं द्वारा निर्धारित पाबंदियां लागू नही थी, इसीलिए उन्हें राष्ट्रवादी आंदोलन में सम्मानजनक स्थान नहीं दिया गया। कम्युनिस्ट इतिहासकारों ने तो गिडालू का अक्सर उल्लेख किया, परंतु राष्ट्रवादियों या गांधीवादियों ने उसकी चर्चा नहीं की। भारतीय राष्ट्रवाद के दौरान स्त्रियों को सार्वजनिक क्षेत्र में जो भागीदारी दी गई थी, वह वही पुराने पितृसत्तात्मक ढांचे और लैंगिक विषमताओं के अंतर्गत ही थी। उनकी भूमिका की शुरूआत शक्ति की देवी दुर्गा के रूप में स्त्रियों को राष्ट्रवाद के साथ जोड़ने से हुई थी और जहां पर भी स्त्रियों ने इस भूमिका से अलग हटकर परंपरागत छवि को

बदलने की कोशिश की, उन पर न केवल पाबंदियां लगाई गईं, बल्कि उनकी निंदा भी की गई।

इस पर सरकार का तर्क है कि "परंपरा में ऐसी मजबूत जड़ों" से स्पष्ट होता है कि क्यों महिलाओं का इतना राजनीतिकरण संभव नहीं हुआ और क्यों यह भारत में स्त्रियों की सामाजिक मुक्ति को किसी सार्थक सीमा तक बढ़ावा देने में असफल रहा।" स्त्री–प्रश्नों में कभी भी कांग्रेस और उसके नेताओं की रुचि नहीं रही। उन्होंने स्त्रियों को केवल प्रतीकात्मक उपस्थिति ही दी, निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में कभी भी स्त्रियों को शामिल नहीं किया। इससे नाराज होकर सरला देवी चौधरी ने अफसोस प्रकट किया था कि कांग्रेस उनको केवल कानून तोड़क बनाना चाहती थी न कि कानून निर्माता।

फिर भी यह कहना गलत नहीं होगा कि इन सीमाओं के बावजूद धीरे–धीरे भारतीय स्त्रियों ने अपनी भूमिका को विस्तार दिया और परंपरागत भूमिका को भी नहीं तोड़ा, इसमें शौकत अली और मुहम्मद अली की बुजुर्ग वालिदा का उदाहरण दिया जा सकता है। वालिदा बी अमन ने सारी जिंदगी पर्दे में गुजारने के बाद खिलाफत–असहयोग आंदोलन के दौरान पंजाब की एक सभा को संबोधित करते हुए अपना बुरका उठाया और कहा कि एक मां को अपने बच्चों के सामने पर्दे की जरूरत नहीं होती। उनकी इस भाषा ने निःसंदेह पर्दे की विचारधारा को चोट पहुंचाई। ' यदि व्यापक स्तर पर देखा जाए तो इस प्रकार की सक्रियता और राजनीतिकरण से नारीवादी चेतना में कुछ ज्यादा फर्क नहीं आया। परंतु जिन महिलाओं ने आंदोलन में सचमुच भाग लिया था उनका जीवन अब पहले जैसा नहीं रह गया था। उनकी चेतना में अब सार्वजनिक और निजी का विभाजन धीरे–धीरे धुंधला होता जा रहा था। अब भारतीय नारीवाद के अंतर्गत लैंगिक संबंधों की परंपरागत सीमाओं और विचारधाराओं को चुनौती दी जा रही थी। इन्हीं वर्षों के दौरान भारतीय महिला आंदोलन ने साथ–साथ स्त्री प्रश्न पर भी आवाज उठाना प्रारंभ कर दिया था और समानता की मांग ने भी जोर पकड़ा। 1910 के बाद से उग्रराष्ट्रवादी स्त्रियां महिला अधिकारों के मुद्दे पर होने वाले आंदोलनों में अधिक सक्रिय नजर आईं।

1910–1920 ऐसा दशक था जिसमें सर्वप्रथम महिला संगठनों के गठन के प्रयास किए गए। वीर भारत तलवार और इन्द्राणी चटर्जी ने इस बात का उल्लेख किया है कि 1910 तथा 1920 के दशक में महिलाओं के बीच समानता की बहस किस प्रकार उभरी, विशेष रूप से उन महिलाओं के मध्य जो राष्ट्रवाद तथा महिला अधिकारों के आंदोलनों में सक्रिय थीं। उन्होंने महिला अधिकारों को न केवल राष्ट्रवाद से जोड़ा बल्कि स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिए जाने की मांग का राष्ट्रवादी दलीलों के द्वारा बचाव भी किया। 1921–22 के आंदोलन की एक जुझारू महिला उर्मिला देवी ने घोषणा की कि स्वराज का अर्थ है अपना राज तथा स्वाधीनता का अर्थ है, अपने आपको शक्ति और ऊर्जा से ओत–प्रोत कर लेना। 1920 के दशक में महिलाओं के अधिकारों पर दो बिल्कुल अलग–अलग विचारधाराएं थीं। एक विचारधारा का तर्क यह था कि औरतों को अधिकार इसलिए मिलना चाहिए क्योंकि वह समाज में मां की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, वहीं दूसरी का तर्क यह था कि उनमें और पुरुषों में जैविक असमानताएं होते हुए भी जहां तक इच्छाओं, आकांक्षाओं और क्षमताओं का प्रश्न है विशेष अंतर नहीं होता और उन्हें वे सब अधिकार मिलने चाहिए जो पुरुषों को मिले हुए हैं। इसी के मद्देनजर स्त्रियों को एक साथ लाने और संगठित करने के प्रयास प्रारंभ किए गए। स्त्रियों को बड़े पैमाने पर एक साथ लाने का पहला प्रयास 1908 में किया गया। मद्रास में महिला परिषद या लेडीज कांग्रेस संपन्न हुई, जिसमें समूचे दक्षिण भारत से महिलाएं शामिल हुई। इस बैठक में स्त्रियों द्वारा तमिल, तेलगू, मलयालम, मराठी तथा अंग्रेजी में 19 पर्चे पढ़े गए। इसके दो वर्ष बाद सरला देवी ने अखिल भारतीय महिला संगठन के गठन के उद्देश्य से भारत स्त्री महामंडल की स्थापना की। यद्यपि मंडल में बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों एवं वर्णों की स्त्रियों को शामिल किया गया, फिर भी संगठन बड़े पैमाने पर लाहौर, इलाहाबाद तथा कलकत्ता की मात्र तीन शाखाओं में सिमट कर रह गया। सन् 1917 में ऐनी बेसेंट, डोरोथी जिन, राज दास, मालती पटवर्धन, अम्मू स्वामीनाथन, श्रीमती दादाभाई एवं श्रीमती अम्बुजमल ने मिलकर 'वीमेन इंडियन एसोसिएशन' की स्थापना की। इस पर टिप्पणी करते हुए राजकुमारी अमृत कौर ने 1932 में इसे भारत में उदित होने वाले पहले शुद्ध नारीवादी संगठन की संज्ञा दी।" एम.ई. कून्जिस के अनुसार, इस संगठन ने नारी जागृति के विकास को नूतन आयाम दिए। इससे भारतीय नारीवाद की जागरूक एकता उभरी, जिसकी शुरूआत सन् 1914 में बेसेंट के भारतीय राजनीति में प्रवेश एवं 'जागो भारत' श्रृंखला के तहत अनेक भाषण देने के साथ हुई।

बेसेंट दिसंबर 1917 में संपन्न हुई कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्ष चुनी गई और अपने अध्यक्षीय भाषण में बेसेंट ने स्त्रियों को होम रूल संघर्ष में भाग लेने के लिए उत्साहित किया तथा सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में उनका उत्साहवर्धन करते हुए नारी के रूप में उन्हें आंदोलन में विशेष भूमिका अदा करने की जिम्मेदारी सौंपी। इस प्रकार पुनरुत्थानवाद को पहली बार साफतौर पर बेसेंट द्वारा सक्रियतावाद से जोड़ दिया गया। एनी बेसेंट की राय में स्त्रियां दृढ़ता तथा शक्ति की स्त्रोत थी। स्त्रियों ने राष्ट्रवादी आंदोलन को जो शक्ति दी, सरोजिनी नायडू ने भी उसकी प्रशंसा की। वीमेन इंडियन एसोसिएशन पहला ऐसा स्त्री संगठन था जिसने महिला श्रमिकों की मांगों को उठाया जिसमें महिला श्रमिकों को प्रसूति छुट्टी और लाभ प्रमुख थे। महिला संगठनों ने महिला समानता के लिए जिस मुद्दे को सबसे सक्रियता के साथ उठाया वह महिला मताधिकार का मुद्दा था। महिला प्रतिनिधियों का मानना था कि महिलाओं का मताधिकार संपन्न होना कानूनी एवं सामाजिक सुधार के मामले में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी। अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए भारतीय महिलाओं की ओर से पहली मांग 1918 में साउथ बोरो कमीशन के भारत आने पर उठी थी। इसके बाद 1919 में उस समय भारत के राज्य सचिव मोंटेग्यू के भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने की मांग पर विचार करने के लिए भारत आने पर इस मांग ने पुनः जोर पकड़ा। इसी संबंध में सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में भारतीय महिलाओं का एक प्रतिनिधिमंडल मोंटेग्यू से मिला। परंतु मोंटेग्यू सुधारों की योजना में महिलाओं को मताधिकार से बाहर रखा गया था और इसका फैसला बाद में प्रांतीय विधायिकाओं द्वारा किया गया।

1935 के भारत सरकार अधिनियम ने मतदाता स्त्रियों का अनुपात बढ़ाकर 1:5 कर दिया और विधायिकाओं में उनके लिए सीटें भी आरक्षित कीं। इसके अलावा, 1930 के दशक के दौरान केंद्रीय और प्रांतीय विधायिकाओं में ढेरों ऐसे विधेयक पारित हुए, जो संपत्ति, विरासत और तलाक के बारे में स्त्रियों के अधिकारों को निरूपित करते थे, दहेज पर सीमा और वेश्यावृत्ति पर नियंत्रण लगाते थे। परंतु इन्हें व्यवहार में लाना काफी कठिन था। क्योंकि इन मुद्दों पर जन आंदोलन खड़ा करने के बजाय इन स्त्री संगठनों ने सरकार को ज्ञापन दिए और राष्ट्रवादियों से समर्थन की प्रार्थना की। सरकार ने भी हिचकते हुए हस्तक्षेप किए और अक्सर वह समझौते के सूत्रों को महत्त्व देती थी क्योंकि उनका विश्वास था कि अधिकांश भारतीय स्त्रियां अभी भी अपने अधिकारों के समुचित उपयोग में समर्थ नहीं थीं।

बीसवीं सदी के आरंभ के इस विकासक्रम जिसमें नई चेतना और संगठनों का उदय हुआ था, ने कुछ स्त्रियों के लिए उल्लेखनीय परिवर्तन अवश्य पैदा किए। इसमें से कई प्रबुद्ध, मध्यमवर्गीय और शहरी स्त्रियों ने सार्वजनिक क्षेत्र में कारगर ढंग से स्थान बनाया। पर वे भी अपनी नई सामाजिक भूमिकाओं तथा गृहस्थी और बच्चों की देखभाल की कठोर मांगों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती रहीं। जहां तक भारतीय स्त्रियों का प्रश्न है, तो उनमें परिवर्तन नहीं के बराबर था। कारण यह था कि स्त्री–संगठनों और कार्यकर्ताओं के प्रयास उस चीज से बाधित होते रहे, जिसे गेराल्डाइन फोर्ब्स ने 'एक सामाजिक नारीवादी विचारधारा का ढांचा' कहा है। इस ढांचे में स्त्रियों की एक खास सार्वजनिक भूमिका को तो मान्यता दे दी गई थी, पर साथ ही स्त्री–पुरुष के बीच सामाजिक, शारीरिक और मानसिक अंतर को भी स्वीकार किया गया था। 1940 के दशक के दौरान स्त्रियों पर सीमाएं लगाने वाली विचारधारा और उसे स्वीकार करने वाले स्त्री संगठनों के प्रभुत्व को चुनौती मिलने लगी थी। अब वर्गीय और धार्मिक सीमारेखाओं के इतर स्त्रियों ने सार्वजनिक क्षेत्र में अपने लिए अधिक सक्रिय भूमिका की मांग शुरू कर दी थी। स्त्रियों की यह सक्रियता 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सबसे अधिक स्पष्ट रूप से नजर आई। इस समय आंदोलन में ग्रामीण स्त्रियों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए स्वयं आगे आईं।

1940 के दशक के दौरान ही पाकिस्तान आंदोलन के उदय ने उपमहाद्वीप की मुसलिम स्त्रियों के लिए भी राजनीतिक कार्यवाही का नया क्षेत्र पैदा किया। 1935 में सांप्रदायिक आधार पर महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण पर वो बंट गई थी जो कि पुरुषों की राजनीति से प्रभावित था।इस प्रकार 1940 के दशक में वर्ग, जाति और धर्म की सीमाओं से परे, अधिकाधिक भारतीय स्त्रियों ने साम्राज्यवाद विरोधी और लोकतांत्रिक आंदोलनों में भागीदारी करके अपने लिए सक्रिय भूमिका के दावे किए। लेकिन जैसा कि कुमारी जयावर्धना कहती हैं, उन्होंने "इन अवसरों का उपयोग ऐसे मुद्दे उठाने के लिए नहीं किया, जो उनके स्त्री रूप को प्रभावित करते थे। "57 उनके अपने लक्ष्य राष्ट्रीय स्वतंत्रता, समुदाय के सम्मान या वर्ग–संघर्ष के लक्ष्यों के अधीन रहे। जुझारू कार्यवाहियों के दौरान यदि सीमाएं टूटी तो, बाद में तेजी से, बिना किसी अपवाद के दोबारा कायम हो गईं।

वहीं पाकिस्तान के आंदोलन ने भी कुछ मुसलिम स्त्रियों को सार्वजनिक कार्यवाही में अवश्य खींचा, पर विभाजन के अनुभव ने एक बार फिर मुसलिम स्त्रीत्व के परंपरागत आदर्श को बल पहुंचाया कि इस स्त्रीत्व की रक्षा घरेलू क्षेत्र में ही संभव है। इस प्रकार उपनिवेशी भारत में स्त्री प्रश्नों को वह प्राथमिकता नहीं मिल पाई जो मिलनी चाहिए थी। हालांकि कुछ समझदार स्त्रियों ने राजनीतिक संघर्षों में सक्रिय रूप से भाग लिया और अपने आप को उभरते राष्ट्र के साथ जोड़ा भी, पर मुक्ति की प्रचलित विचारधाराओं में अभी भी नारीवाद का समावेश नहीं हुआ था। समुदाय और राष्ट्र के सम्मान को अभी भी स्त्री हितों और अधिकारों से अधिक महत्व दिया जाता था। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि एक बनी बनाई प्रभुत्वशाली पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध जाकर किसी स्त्री ने अलग दुनिया के बारे में सोचा ही नहीं।

इस प्रकार जब हम राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी को देखते हैं तो वह उनकी घरेलू भूमिका का विस्तार मात्र ही लगती है। पुरुष राजनीतिज्ञों ने महिलाओं के लिए जो भूमिका निर्धारित की थी वह उसी वैचारिक सोच का हिस्सा थी जिसके अनुसार स्त्री और पुरुष के कार्यक्षेत्र अलग–अलग माने गए थे और इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं को एक नई पितृसत्ता के नीचे रहने को मान्यता मिली। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की भूमिका और सीमाएं पहले ही तय कर दी थीं और महिलाओं को उन्हें लांघने की अनुमति नहीं थी। स्वाधीनता आंदोलन को एक धार्मिक प्रक्रिया और सांस्कृतिक लड़ाई माना गया। जिसमें आंदोलन की परंपरावादी जड़ों के कारण महिलाएं आंदोलन में सहभागी तो बनीं, परंतु अपने निजी और सार्वजनिक जीवन में परंपरा से हटकर कुछ नहीं कर सकीं। यही कारण था कि 1940 में जब देश के स्वाधीन होने के आसार दिखने लगे तो महिला आंदोलन पूरी तरह से स्वाधीनता आंदोलन में समाहित हो गया और यह सब इतनी सहजता से हुआ कि सबको लगा कि महिलाओं की मुक्ति संबंधी सभी मुद्दों का हल देश में स्वतंत्रता है। वास्तव में, राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं का कहीं कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था, जिसके कारण स्वतंत्रता के बाद महिला आंदोलन में ठहराव आ गया और वह 1970 के दशक तक संगठित तरीके से आगे नहीं बढ़ सका।

REFERENCES

आशारानी वोहरा, नारी विद्रोह के भारतीय मंच, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1991, पृ0 80–81

सरकार, सुमित (1983), *मॉडर्न इण्डिया*, दिल्ली, मैकमिलन एण्ड कं0

कौर, मनमोहन, रोल आफ वीमेन इन दी फ्रीडम मूवमेंट 1885–1947,दिल्ली, स्टर्लिंग

कीर, पॉलिटिकल टवैल इन इण्डिया, 1907–1917, दिल्ली, मनोहर पब्लिशर्स

बोहरा, आशारानी (1991), *नारी विद्रोह के भारतीय मंच*, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस

कुमार, राधा (2001) *स्त्री संघर्ष का इतिहास 1880–1990*, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन

सिंह, लता (2001) *''राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाएं : भूमिका के सवाल'' में नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे* (संपादित) आर्य साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता, जिनी, दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय